ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-1 No.3 January-December 2020

'द्वंद्व' के नाटककार - नंदकिशोर आचार्य

शोध निर्देशक
डॉ. कृपानिधि तिवारी
प्राचार्य
श्री अग्रसेन महिला पी.जी महाविद्यालय,
महवा (दौसा)

शोधार्थी
कुलदीप कुमार
हिन्दी विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर।

'द्वंद्व' अनेकार्थी शब्द है जिसका एक अर्थ है दो परस्पर विरुद्ध वस्तुओं या भावों का जोड़ा-जैसे शोक-मोह, शीत-उष्ण आदि।

डॉ. पद्मा अग्रवाल ने इसे आँग्ल भाषा के **'कॉन्फ्लिक्ट'** अर्थ में परिभाषित किया है। उनकी दृष्टि में मानसिक तनाव की वह अवस्था जो दो या दो से अधिक ऐसी विरोधी इच्छाओं के उत्पन्न होने से, जिनकी एक ही समय पर एक साथ पूर्ति संभव न हो, अथवा अन्य कारणों से अथवा, अपनी ही कोई न्यूनता या हीनता या वातावरण अवरोध अथवा इच्छाओं के विघटन से उत्पन्न होती है, द्वंद्व है।[1] 'द्वंद्व' शब्द अत्यन्त व्यापक है। दर्शन के अन्तर्गत उल्लिखित द्वैतवाद, सांख्यमत शैव दर्शन आदि में भी द्वंद्व की अभिव्यक्ति हुई हैं। पश्चिमी चिन्तकों में मार्क्स, हीगल, कांट आदि विचारकों ने भौतिक संदर्भ में द्वंद्व का उल्लेख किया है। मार्क्स के चिन्तन की अभिव्यक्ति द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के रूप में हुई है।

द्वंद्व सामान्यतया दो विरोधी विचारों के मध्य संघटित होता है। किन्तु हीगल के अनुसार सद् और सद् अथवा असद् और असद् के माध्यम से उजागर होता है। इस प्रकार का द्वंद्व स्पर्धात्मक वैचारिकता के द्वारा सम्भव है।[2] अस्तित्व भेद में द्वंद्व के दो भेद हैं- 'वहिर्द्वन्द्व' और 'अन्तर्द्वन्द्व'। 'द्वंद्व' संघटना का अस्तित्व जब बाहरी होता है, तब दो या दो से अधिक स्वतंत्र इकाइयों की राग या द्वेषवृत्ति का प्रसार साहित्य में विभिन्न पात्रों तथा जीवन में विभिन्न व्यक्तियों, समूहों, राष्ट्रों, विश्वभर की भावात्मक अनुबंध वृत्तियों में देखा जाता है। अन्तर्द्वन्द्व का अस्तित्व व्यष्टि चेतना की गहराइयों में होता है जिसकी राग या द्वेषमूलक भावुकता एवं विचार सरणि ऐकान्तिक और मानसिक होती है। इसका आश्रय व्यक्ति होता है। अपनी चेष्टा एवं वृत्तियों के अनुरूप वह एक समुदाय का रूप भी ग्रहण करता है। इसका स्वरूप है रहस्यमय या गोप्य आत्म-संवाद या समुदाय विशेष की गुप्त मंत्रणा। व्युष्टि

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-1 No.3 January-December 2020

चेतना से समूह चेतना में रहस्य वृत्ति के रूप में होकर भी एक सीमा तक बद्ध ही रहता है। इसे मंत्रणा की संज्ञा दी जाती है। अन्तर्द्वन्द्व का विषय है कि किसी वस्तु के (आलंबन) के संबंध में व्यक्ति की (साहित्य में आश्रय की) अन्तवृत्तियों का मानसिक तनाव, जो विकल्पात्मक दशा में राग या द्वेषमूलक होता है। अन्तर्द्वन्द्व रचना-प्रक्रिया में साहित्यकार के पात्रों की अन्तश्चेतना की कुण्ठा के प्रकाश्य रूप को प्रकट करते हैं।[3]

नाटक का रंगमंचीय स्वरूप ही केवल प्रधान नहीं होता है, वह तो मनोरंजन की दृष्टि से जनरूचि को जगाए रखने की कला मात्र से संबंद्ध है। असली सफलता है पात्रों के व्यक्तित्व की महानता के मानवीय तत्त्व, जिसकी सर्जना करने के लिए वह द्वंद्व का चित्रण करता है। अपने पात्रों के कथोपकथन से ही वह नाटक के सम्पूर्ण लक्ष्य को प्रकट कर सकता है।[4]

नाटकों के सम्बन्ध में अंग्रेजी उक्ति है- 'नो कॉन्फ्लिक्ट नो ड्रामा।' इस उक्ति में विषम द्वंद्व और उससे जन्य नाटकीय संवेदना का आकलन है। द्वंद्व को जिस अर्थ में इस प्रबंध में ग्रहण किया गया है, उसके सम्बन्ध में तो यही करना समीचीन होगा कि द्वंद्व के बिना नाटक के अर्थ क्षेत्र की कल्पना ही संभव नहीं है। नाटक में कथोपकथन की अनिवार्यता ही द्वंद्व चित्रण का मूल है। नाटक सर्वाशत: सम एवं विषम द्वंद्वों की सचेतन संघटना है जो अर्थ और शैली दोनों ही दृष्टियों में द्वंद्वमय है। नाटकीय द्वंद्व चित्रण में नाटककार पूर्णत: तटस्थ होता है।[5]

नाटक के संदर्भ में विचार करते हुए द्वंद्व की स्थिति को डॉ. रामकुमार वर्मा ने नियमत: स्वीकृति दी है। उनके मतानुसार "नाटक का प्राण उसके संघर्ष में पोषित होता है। यह संघर्ष जितना अधिक नाटककार की विवेचन-शक्ति में होगा, उतना ही जिज्ञासामय उसका नाटक होगा। अत: नाटककार ऐसी स्थितियों की खोज में रहता है जिसमें उसे विरोध की तेजस्वी शक्तियाँ मिलती है।"[6]

नाट्यकला की दृष्टि में अन्तर्द्वन्द्व का महत्त्व कहीं अधिक है। यहीं आन्तरिक संघर्ष या अन्तर्द्वन्द्व दुखान्त नाटकों में तो और भी स्पष्ट, कलात्मक और मोहक होकर हमारे समक्ष उपस्थित होता है। इब्सन ने तो मानव चरित्र की उत्कृष्ट कल्पना ही नाटक की सबसे उत्तम कृति मानी है और मानव चरित्रों की कल्पना बिना आन्तरिक संघर्ष के हो भी नहीं सकती।[7] जागतिक जीवन मे जन्म से मरण तक द्वंद्वात्मक कलापों का ही संयोगवियोग है।[8]

आज जबकि आधुनिक हिन्दी नाट्यलेखन अपनी औसत गति पकड़ चुका है और हिन्दी रंगमंच भी प्रयोगात्मक स्थितियों से गुजरकर विकसित हो रहा है, उस स्थिति में स्वत: कुछ गंभीर रंगमंचीय नाटक सामने आये है, हालांकि दोनों की अपनी सीमाएं भी उतनी ही स्पष्ट है। पिछले कुछ वर्षों में नंदकिशोर आचार्य अपने नाटक 'देहान्तर' के कारण बहुचर्चित हुए है और अपनी नाटय संभावनाओं के कारण उन्होंने पूरे नाट्यजगत का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है ।[9]

नंदकिशोर आचार्य मानते है कि उन्होंने कभी भी किसी विचार को व्यक्त करने या यह सोचकर कि नाटक लिखना है कभी भी नाटक की रचना नहीं की। उन्होंने तभी नाटक की रचना की। जब उन्हें कोई नाट्यस्थितियों ने आकर्षित किया, यहीं नाट्यस्थितियाँ ही एक प्रकार की द्वंद्वात्मकता की है। पाश्चात्य नाटकों में जिसे त्रासदी कहते हैं आचार्य जी के नाटकों में यह द्वंद्व के रूप में उभरकर सामने आया है।

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-1 No.3 January-December 2020

आचार्य के लगभग सभी नाटकों में द्वंद्वात्मकता स्थितियाँ उभरकर सामने आती है चाहे वह 'किमिद्म-यक्षम्' के प्रोफेसर की अपनी अतीत को, इतिहास को जानने की हो, 'देहान्तर' के ययाति, पुरु, देवयानी, विन्दुमती और शर्मिष्ठा के सामाजिक मान्यताओं को ताक पर रख, शारीरिक सम्बन्धों की हो, 'किसी और का सपना' के दूसरा पात्र की समाज को मान्य और स्वयं को मान्य मान्यताओं की हो या 'गुलाम बादशाह' के बलबन की सत्ता और उसके छिन जाने के भय की हो या ''जिल्ले सुब्हानी'' के समलैंगिक संबंधों की हो। द्वंद्वात्मकता आचार्य जी के नाटकों की जान है यहीं द्वन्द्वात्मकता ही उनके नाटकों को संवादों के माध्यम से आगे बढ़ाते हुए नाटक के उद्देश्य की पूर्ति में सफल सहायक सिद्ध होती है।

आचार्य जी के प्रथम नाटक 'देहान्तर' का सम्पूर्ण ढाँचा ही द्वंद्वात्मकता की नींव पर खड़ा नजर आता है। 'देहान्तर' एक पौराणिक एवं प्रसिद्ध कथानक पर आधारित है जिस पर पहले भी कई नाटकों की रचना हो चुकी है।

'देहान्तर' के प्रसंग से जुड़ी नाट्यलेखन की कड़ी में नंदकिशोर आचार्य का 'देहान्तर' अगली कड़ी है। नंदकिशोर आचार्य के इस नाटक से पूर्व देहान्तर अथवा देह प्रसंगों या देह बदलने वाले प्रसंगों को आधार बनाकर गिरीश कर्नाड़ का 'ययाति' एवं 'हयवदन', शंकर शेष का 'अरे मायावी सरोवर' और बाद में प्रभाकर श्रोत्रिय का 'इला' जैसे नाटक सामने आ चुके हैं जो इसी भावभूमि से जुड़े एवं उसी संवेदना से अनुप्राणित है। इन नाटकों में यदि देहान्तर के द्वंद्व को 'देहान्तर' नाटक के अन्तर्द्वन्द्व की तरह उभारा नहीं जा सका है अथवा वैसी सूक्ष्म मन:स्थितियों का अंकन नहीं हो पाया है।[10].

इस नाटक में स्त्री-पुरुष के दैहिक सम्बन्धों के पश्चात् होने वाली कशमकश और अपरिभाषित व्यथा को साकार करना नाटककार का उद्देश्य कतई नहीं है अपितु दैहिक सम्बन्धों को भोगते हुए काष्ठ कीट की तरह अन्दर-ही-अन्दर खोखला करने वाला अपरिभाषित दर्द कैसे झेला जाता है और उसकी परिणति कितनी दु:खद है, इसकी सूक्ष्म द्वंद्वात्मक अन्तर्चिंताओं के कई स्तरों की महीन बुनावट को नाटककार ने अलग-अलग कोण से रस्सी की तरह बटा है। कहीं मूल्य-मर्यादा की विभीषिका बाधक है तो कहीं द्वंद्व की घोर काजर कोठरी। इसके बीच तना हुआ तीखा बारीक असिपथ। सम्बन्धों का खारा अग्नि-समुद्र, जिसे प्यास बुझाने के लिए पीया नहीं जा सकता। असिपथ की इसी धार के एक ओर खड़े है ययाति, शर्मिष्ठा, पुरु, विन्दुमती आदि पात्र, जिन्हें आत्मीय सम्बन्धों के इन अग्नि-समुद्र को पारकर दूसरी ओर जाना है।

सम्बन्धों की प्यास सभी को है, लेकिन मूल्य-मर्यादाओं, देहान्तर की पीड़ा के कारण सभी एक-दूसरे से कट जाते हैं। यह कटना, विच्छिन होना ही जमीन से कटना है। द्वंद्व और संघर्ष की इस त्रासदी में सभी पूरी तरह नंगे है, निचुड़े हुए, आज के विष को पीते हुए। भावना का द्वंद्व, तर्क का द्वंद्व, प्रेमी को पाने का द्वंद्व, पिता-पुत्र, माँ-पुत्र द्वंद्व, देहान्तरण का द्वंद्व, काम-सम्बन्धों का द्वंद्व, व्यवहार का द्वंद्व, आचरण का द्वंद्व, मन का द्वंद्व, विचार-चिन्तन का द्वंद्व, मूल्य-मर्यादाओं का द्वंद्व, प्यास-लालसाओं का द्वंद्व, दाम्पत्य सम्बन्धों का द्वंद्व। भावात्मक स्तर पर एक-दूसरे को पाने का द्वंद्व, सभी एक-दूसरे में गुत्थमगुत्था लेकिन एक-दूसरे से उतने ही दूर। पूरे नाटक की बुनावट में तनाव-द्वंद्वों का अग्नि-घर्षण, जो व्यक्ति की समकालीन नियति है।[11]

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-1 No.3 January-December 2020

'देहान्तर' के केन्द्र में शर्मिष्ठा का अन्तर्द्वंद्व है। पति और बेटे की गड्ड-मड्ड में वह एक माँ और पत्नी के रूप में जिस त्रासदी को भोगती है वही 'देहान्तर' की विषय-वस्तु है। पिता और पुत्र के बीच के मनोवैज्ञानिक संबंधों को तो अक्सर व्याख्यायित करने की कोशिश की जाती है, परन्तु एक स्त्री उनसे कैसे प्रभावित होती है-यह जानने का अवकाश तो 'देहान्तर' ही हमें देता है।[12]

देहान्तर का सर्वाधिक द्वंद्व 'शर्मिष्ठा' को है। ययाति जिस यौवन से शर्मिष्ठा को भोगना चाहता है। वह यौवन शर्मिष्ठा के पुत्र पुरु का है। ययाति के साथ सम्भोग उसे पुत्र के साथ सम्भोग जैसा पीड़ादायक लगता है। देहान्तर की सर्वाधिक पीड़ा शर्मिष्ठा को ही भोगनी पड़ती है। ययाति और पुरू के द्वंद्व से भी गहरा और सूक्ष्म द्वंद्व शर्मिष्ठा का है क्योंकि अपने बेटे से उधार लिये यौवन के बाद अपने पति के साथ सहवास उसे पुत्र के साथ सहवास की अनुभूति कराता है जो किसी शर्त पर उसे मान्य नहीं और अपने पुत्र की सेवा करते हुए उसे अपने वृद्ध पति की सेवा करने की अनुभूति होती है, जो किसी प्रकार जायज नहीं। पति के साथ रहने पर पुत्र की उपस्थिति ओर पुत्र के पास रहने पर पति की उपस्थिति के द्वंद्व से शर्मिष्ठा का पूरा व्यक्तित्व प्रभावित होता है।[13]

देहान्तर का द्वंद्व ययाति को भी है। अपने पुत्र के उधार लिये यौवन में वह देवकन्या बिन्दुमती से विवाह कर उसके साथ शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करता है किन्तु बाद में यह मालूम होने पर कि बिन्दुमती पुरू पर आसक्त थी और उसके यौवन को ययाति के शरीर द्वारा भोगने के लिए ही उसने चक्रवर्ती से विवाह किया, तो ययाति का अन्तर्द्वंद्व और तनाव चरम पर पहुँच जाता है क्योंकि अज्ञानतावश ही सही किन्तु अब तक उसने पुत्रवधु के साथ पत्नी जैसा सम्बन्ध बनाये रखा था। भीषण यंत्रणा, मानसिक द्वंद्व, तीखी और गहरी वेदना, पौरुष और जीवन के भोग में विश्वास करने वाले ययाति का द्वंद्व अन्तरात्मा को हिला देने वाला है।[14] दूसरी और विन्दुमती में द्वंद्व है, तनाव नहीं और उसके द्वंद्व का कारण यह नहीं है कि उसने ययाति से विवाह किया पुरु से नहीं बल्कि उसमें द्वंद्व का असली कारण यह है कि उसने ययाति के शरीर में अपने प्रेमी पुरु के यौवन का अनुभव कर, जानबुझकर ययाति से विवाह किया था लेकिन ययाति के देह में पुरु का यौवन भोगते हुए भी, देह सम्बन्ध के उपरान्त उसका अनुभव यह है कि "यह सब पुरु का था, पुरु नहीं था लेकिन उसे नहीं पा सकी मैं।" अपने प्रेमी पुरु के यौवन, तेज और यौवन के उद्दाम भोग की आकांक्षा लिये ययाति से विवाह करने की त्रासदी के बाद बिन्दुमती का द्वंद्व भी अन्य पात्रों के द्वंद्व से कुछ कम नहीं है।[15]

वहीं पुरु का द्वंद्व भावनाओं से जुड़ा है, देह से नहीं। पुरु का अन्तर्द्वंद्व एवं तनाव उस शरीर से है। जिससे उसके पिता में शर्मिष्ठा को भोगा है। इसलिए वह उस देह को कैसे स्वीकार कर सकता है और वह चाहकर भी पिता से अपना यौवन वापस नहीं ले सकता। दूसरी ओर, अपनी माता द्वारा सेवा किये जाने में पुरु को एक माँ की वात्सल्यमयी सेवा का नहीं अपितु बूढ़े पति की सेवा कर रही पत्नी का एहसास होता है और इसलिए अपनी माँ से वह कहता भी है, "तुम्हारी परिचर्या में वात्सल्य नहीं है, माँ ! एक लगाव है जो असहाय और वृद्ध पति के लिए होता है।"[16]

जयदेव तनेजा का कहना है- "इसमें स्त्री-पुरुष के यौन-सम्बन्धों का अत्यंत सूक्ष्म, मनोवैज्ञानिक और विडम्बनापूर्ण रूप प्रस्तुत किया गया है। इसमें एक ओर रानी शर्मिष्ठा का तीव्र एवं मर्मभेदी अन्तर्द्वंद्व है जिसमें उसे पति से सहवास, पुत्र से संभोग जैसा जघन्य कुकृत्य लगता है तो दूसरी ओर

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-1 No.3 January-December 2020

वृद्ध पुरु की दारूण वेदना है जिसे लगता है कि माँ की परिचर्या में वात्सल्य नहीं एक लगाव है जो असहाय औ वृद्धपति के लिए होता है।"[17]

नंदकिशोर आचार्य ने अपने नाटक 'देहान्तर' में पौराणिककालीन पात्रों एवं परिवेश को स्थान देकर जटिल मन:स्थिति, कुंठाग्रस्त काम सम्बन्ध, देहान्तर का द्वंद्व और उससे उपजे तनाव जैसे कई बिन्दुओं को नाटकीयता के साथ रेखांकित किया है। स्पष्टत: इस नाटक में अपने पति द्वारा बेटे से यौवन उधार लेने के बाद शर्मिष्ठा के उस द्वंद्व को दृश्यत्व दिया गया है, जहाँ पति के शरीर में बेटे की उपस्थिति और बेटे के शरीर में पति के आभास से उलझा हुआ शारीरिक और मानसिक सम्बन्ध दृश्यत्व पाता है। परिस्थितियों के घात-प्रतिघात, द्वंद्वात्मक मानसिक स्थिति, बिडम्बनापूर्ण नाट्यात्मक परिस्थिति एवं परिवेश और देहान्तर के द्वंद्व के कारण भी एक तरह की एकाग्रता के कारण यह नाटक संरचनात्मक दृष्टि से जटिल होते हुए भी अन्तर्द्वंद्व एंव तनाव की सघनता से अधिक प्रभावशाली बन गया है। नाट्यभाषा ने तनावयुक्त द्वंद्वमूलक मूल संवेदना को सम्प्रेषित किया है और उसे समर्थन भी दिया है।[18]

नाटक का पूरा वातावरण द्वंद्व एवं तनाव से सृजित हुआ है और ऐसा महसूस होता है कि नाटक के पात्र भी जैसे द्वंद्व से ही उपजे हैं। नाटक के भिन्न-भिन्न स्थितियों, द्वंद्वात्मक संवादों, संदर्भो एवं मन:स्थितियों के अंकन से पात्रों के द्वंद्व का वास्तविक उद्घाटन होता है और द्वंद्व एवं तनाव से गुजरते पात्रों के मनोवैज्ञानिक सूक्ष्म अंकन के आधार पर उनकी चरित्र सृष्टि वस्तुत: तीव्र नाट्यानुभूति और सघन मानसिक स्थितियों के तादात्म्य का परिणाम है। नाटक के आन्तरिक रंगमंच से स्पष्ट होता है कि जटिल मन:स्थितियों से गुजरते, तनावों में जीते और अन्तर्द्वंद्वों से विचलित पात्रों को मानसिक स्तर पर प्रस्तुत करने में नाटककार नंदकिशोर आचार्य ने सफलता पायी है।[19]

'हस्तिनापुर' नाटक के बारे में नंदकिशोर आचार्य लिखते हैं कि जब मैंने इस विषय को आधार बनाकर सोचना शुरू किया तो अचानक मुझे अम्बिका और भीष्म के बीच का एक द्वंद्व दिखायी दिया, खासकर अम्बिका का अपना अन्तर्द्वंद्व, क्योंकि महाभारत को जो लोग कहानी की तरह पढ़ते रहे हैं, शायद वे इस बात को नहीं जानते । लेकिन जिन्होंने मूल महाभारत पढ़ी है, वे इस बात को जानते हैं कि जब अम्बिका के पास देवर को भेजने की बात हुई तो अम्बिका उस प्रस्ताव से कितनी प्रसन्न थी। उसे यह नहीं मालूम था कि कृष्ण द्वैपायन या मुनि व्यास उसके देवर है। उसने यही माना कि भीष्म ही देवर है। इस बात से वह उल्लसित है। भीष्म की जगह कृष्ण द्वैपायन का आना उस का सारा उल्लास शिथिल कर देता है, एक निराशा उस पर छा जाती है। इस पूरे दृश्य में अम्बिका की वेदना, उस का उल्लास और उस के अन्तर्द्वंद्व में अभिनय की जबर्दस्त सम्भावना मुझे लगी और लगा कि अगर इसका रूप विकसित होता है तो शायद एक स्त्री के मन को समझने में मदद मिल सकती है। उस का अन्तर्द्वंद्व अभिनय के माध्यम से बहुत प्रभावी होगा।[20].

यहीं कारण है कि 'हस्तिनापुर' नाटक के प्रारम्भ होते ही द्वंद्वात्मकता प्रारम्भ हो जाती है जब शुभा विदुर से कहती है कि "किस महाराज के साथ खाना खाकर आये हो ?" यही द्वंद्व नाटक के अन्त तक बना रहता है। भीष्म जो महाभारत में महानायक के रूप में प्रतिस्थापित है जो अपनी प्रतिज्ञा

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-1 No.3 January-December 2020

धर्म और उत्तराधिकारी रक्षक के रूप में जाने जाते है। वे धर्म, राज-धर्म, पुत्र-धर्म और प्रतिज्ञा के द्वंद्व में फँसे नजर आते हैं-

भीष्म -भीष्म सरीखे पुत्र के रहते इतनी उद्विग्नता का कोई कारण नहीं होना चाहिए माँ।

सत्यवती -तुम्हारा भीष्म होना ही इस उद्विग्नता का कारण है पुत्र ।

भीष्म - मैं समझा नहीं

सत्यवती - हाँ, तुम्हारी वह प्रतिज्ञा, जिस के कारण तुम भीष्म हो। कुरु वंश और राज्य की रक्षा का दायित्व आज किस पर है।

भीष्म- निश्चय ही आप के इस पुत्र पर माँ।

सत्यवती- लेकिन यह पुत्र न वंशवृद्धि करना चाहता है न राज्य सम्भालना चाहता है।

भीष्म- प्रतिज्ञा का निर्वाह सब से बड़ा धर्म है माँ।

सत्यवती- अब तो वह स्थिति ही नहीं रही। जब संतान ही नहीं रही तो उसके अधिकार को चुनौती का प्रश्न ही कहाँ रहा। उचित यही है कि अब तुम राजा बनो और विवाह कर वंशवृद्धि करो।

भीष्म- मैं प्रतिज्ञा से विवश हूँ माँ। मैं इसमें कुछ नहीं कर सकता। मेरी विवशता को समझों माँ।

यही द्वंद्व अम्बिका में भी नजर आता है भीष्म की जगह कृष्ण द्वैपायन का आना उसका सारा उल्लास शिथिल कर देता है एक निराशा उसको घेर लेती है वह अपनी कामनाओं, भावनाओं, प्रेम और राजधर्म के द्वंद्व में उलझ कर रह जाती है वह समझ नहीं पाती की वह अपने मन की मानें, उन कोमल भावनाओं की कद्र करे जो मन ही मन भीष्म को अपना मान चुकी थी या राजधर्म का पालन करते हुए एक ऐसे परपुरुष को स्वयं को सौंप दे जिसके प्रति उसके मन में प्रेम का रंच मात्र नहीं है। अम्बिका को चारों तरफ अंधेरा ही अंधेरा ही नजर आता है और वह आँखे बंद कर राजधर्म का पालन करती हुए स्वयं को कृष्ण द्वैपायन को सौंप देती है और इसी अंधकार की उपज होता है अंधा धृतराष्ट्र।

नंदकिशोर आचार्य के अन्य नाटक 'गुलाम बादशाह' में जो मुख्य भाव है वह बलवन के अन्तर्द्वद्व का है। एक ऐसा व्यक्ति जो सत्ता के प्रति इस कदर आकर्षित है कि वह सभी रिश्तेदारी, अपने सारे नाते-रिश्ते भूलकर सत्ता को प्राप्त करता है, उस के मन में एक द्वंद्व है कि सत्ता के बिना वह अधूरा है लेकिन दूसरी ओर जिस सत्ता को वह महत्त्वपूर्ण मानता है, उसी के पुत्र उस सत्ता को महत्त्वपूर्ण नहीं मानते। वे उससे बचना चाहते हैं। इस कारण से पिता-पुत्र के बीच में एक दूरी और एक द्वंद्व पैदा हो जाता है।[21]

बलबन का बड़ा बेटा मुहम्मद है जिसे वह बहुत प्यार करता है और उसे सुल्तान बनाना चाहता है। लेकिन मुहम्मद सुल्तान नहीं बनना चाहता। क्योंकि वह सोचता है कि सुल्तान बनने के बाद इंसान, इंसान नहीं रहता। यही कारण है कि जब बलबन मुहम्मद को बादशाह घोषित कर देता है तो वह द्वंद्व में फँस जाता है क्योंकि वह बादशाह नहीं बनना चाहता और इसी द्वंद्व से बचने के लिए वह मंगोलों से युद्ध करते हुए जानबूझकर अपनी जान गँवा देता है।

छल, प्रपंच, षड्यंत्र, दुरभिसन्धि से हासिल सत्ता को बलवन का पुत्र न स्वीकार करता है और न मान्यता देता है। सत्ता पर काबिज होना जितना आसान है, उसे बनाए रखना उतना ही मुश्किल है। बलवन भी सत्ता को बनाए रखने के लिए उसी प्रकार अमानुषिकता, जुल्म, अन्याय करता है जैसे आज

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-1 No.3 January-December 2020

तक हर सत्ता करती रही है। आत्मीय जटिल अन्तर्सम्बन्धों का द्वंद्व यहीं से शुरू होता है। नाटककार की इन द्वंद्व संघर्षो पर सूक्ष्म और पैनी पकड़ है।[22]

'गुलाम बादशाह' जितना बलबन के अन्तर्द्वद्व और उसके आखिरी दिनों का नाटक है उतना ही आज के राजनीतिक परिदृश्य का भी। राजनीति पर कुछ परिवारों की कुण्डली की लपेट, चुनिन्दा गुट, शासक और शासित के बीच गहरा अन्तराल, भुला दिये गये पूर्वनायक और राजनीति की जरूरत बन चुके 'गंदे हाथ' ये सब अतीत की ही नहीं, आज की राजनीति के भी केन्द्रीय प्रकरण है। इतिहास की उलझनें जैसे अनसुलझी ही रह जाती है और एक विस्मयकारी नियमितता के साथ समय-समय पर उनकी पुनरावृत्ति होती रहती है।[23]

नंदकिशोर आचार्य ने अपने नाटक 'गुलाम बादशाह' में पिता-पुत्र के द्वंद्वात्मक संबंधों और अंतर्विरोधों का सूक्ष्म और सशक्त विश्लेषण किया है।

नंदकिशोर आचार्य लिखते हैं कि 'पागलघर' में अपने लिए वह नाट्य क्षण जब ढूँढता हूँ तो वह मुझे एक वाक्य में मिलता है। हर आदमी घोड़ा है और हर आदमी सवार है। और निरन्तर नाटक सवार और घोड़े में एक तरह से एक धारावाहिक क्रम में भूमिकाओं का रिवर्सल है और यही नाटक में दूसरे तरह से सत्ता का विमर्श बनता है। हाँ, मैं जो अब तक कह रहा हूँ और तुम्हारी बात में आत्यन्तिक भेद ही क्या है। हर व्यक्ति के मन में एक सवार और एक घोड़ा है। हर व्यक्ति सत्तासीन होना चाहता है और कहीं सत्ता से डरा हुआ भी है और उस से नियंत्रित भी है, यही भाव तो सवार और घोड़ा होने का है। सवार और घोड़े के रूप में जो भाव व्यंजित होता है यही द्वंद्व है और इसे हम दो तरह से देख सकते हैं। एक तो व्यवस्था में ऐसा कुछ है कि एक वर्ग सवार है और एक घोड़ा । यह तो स्थूल रूप से स्पष्ट है। मेरे लिए इस का अर्थ यह है कि मनुष्य के मन में जो सवार है यानी सवार होने की जो आकांक्षा है, उस में ही कहीं घोड़ा होने का भय छुपा हुआ है, जो मनुष्य सत्तासीन होने की आकांक्षा रखता है, वही उस से सर्वाधिक भयभीत भी है। कह सकते हैं मनुष्य का सत्ता की ओर उन्मुख मन सवार है और उस से भयभीत मन घोड़ा है। हर मनुष्य के मन में जो सवार या नेता होने की आकांक्षा है, बलबन होने की आकांक्षा है, वह हर मनुष्य अन्दर से कही गुलाम है और सुल्तान होना चाहता है सुल्तान होने की आकांक्षा ही उस के गुलाम होने का प्रमाण है। इस तरह सुल्तान और गुलाम के बीच का यह द्वंद्व जो गुलाम बादशाह में है वह भी सवार और घोड़े के बीच का ही द्वंद्व है।[24]

यहीं द्वंद्व उनके नाटक 'बापू' में नजर आता है जहाँ बापू स्वतंत्रता प्राप्ति व भारत विभाजन के बाद अपने स्वतंत्रता आंदोलन, अहिंसा की सफलता-असफलता व अपने प्रियजनों के व्यवहार के द्वंद्व में फंसे नजर आते हैं वे कहते हैं-

"पाँवों के ये घाव और फटी बिवाइयाँ तो सबको दिख जाती हैं- लेकिन वे घाव नहीं दिखते किसी को जो मेरी आत्मा में हो गये हैं। कौन-सी चप्पलें बचा सकती हैं आत्मा को उन घावों से ? किसने बिछा दिये हैं ये कील-काँटे और कंकड-पत्थर मेरी आत्मा की राह में ? पर ये मेरे अपने लोग-मेरे साथी जो मुझे 'बापू' कह कर बुलाते है- ये कील काँटे तो उन्होंने बिछाये हैं- ये घाव तो उनके दिये हैं और विडम्बना यह कि उन्हें दिखते ही नहीं ये और खून जो मेरी आत्मा के इन घावों से बह रहा है। नहीं,

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-1 No.3 January-December 2020

शायद मैं गलत कह रहा हूँ । शायद मुझे झूठा घमण्ड हो गया है-अपनी अहिंसा की कामयाबी का। कोई गम्भीर पाप रह गया होगा मेरी आत्मा में- उसी में बह रहा होगा ये खून।"[25]

भारत विभाजन की त्रासदी से आहत बापू लगातार इस द्वंद्व में फंसे नजर आते है कि आखिर इस त्रासदी का उत्तरदायी कौन है? क्या हम लोगों ने इस दिन के लिए मिलकर आजादी की लड़ाई लड़ी है कि एक दिन हम एक दूसरे के खून के प्यासे हो जायें। बापू अपने द्वंद्व से निकल ही नहीं पा रहे हैं। वे भ्रम में हैं कि-

"यह क्या हो रहा है मुझे ? कहाँ चली गई मेरी श्रद्धा ? क्यों शंका होने लगी है मुझे अपने पर? ईश्वर उद्धारक है तो रोशनी भी देगा ही। पर तभी तो देगा जब मैं उस लेने के काबिल बनूँ- अपने मन के भ्रमजाल को भेद सकूँ। तभी तो देख सकूँगा उस रोशनी को जो इस अंधकार के बाहर इंतजार कर रही है मेरा। है, प्रकाश है-पर भ्रमजाल के अँधेरों के पार। मेरे अपने भ्रमों के अंधकार के पार है वो प्रकाश जो ईश्वर ने मेरे लिए रच रखा है- लेकिन अपने इस भ्रमजाल को तो मुझे ही तोडना होगा।"[26]

वे कांग्रेस को लेकर भी द्वंद्व में नजर आते हैं-

"क्या वे सचमुच मेरे साथ थे ? कांग्रेस छोड़ दी सुभाष बाबू तुमने-पर मुझे नहीं छोड़ा शायद- नहीं तो कर्नल जीवन सिंह क्यों आते मेरे पास? पर जिन्होंने कांग्रेस नहीं छोड़ी, वे मुझे छोड़ते गये हैं- एक-एक करके लेकिन वे मुझे छोड़ रहे हैं या खुद को छुड़वा रहे हैं सत्य और अहिंसा से ?[27]

कांग्रेस के द्वारा उन्हें एक अनचाहे सलाहाकार के रूप में ढ़ोना भी आहत कर रहा है-

"लोग मेरे पास आते हैं शिकायतें लेकर-मैं उनसे कैसे कहूँ कि मैं तुम लोगों को कुछ भी कहने का अधिकार खो चुका हूँ ? नहीं कह सकता- क्योंकि वे अब भी मुझे तुम लोगों के साथ खड़ा समझते हैं। और क्या विडम्बना है कि एक अनचाहे सलाहकार को ढ़ोना पड़ रहा है तुम लोगों को और मैं हूँ कि यह जानता हुआ भी बेशर्मी से सलाह दिये जाता हूँ । ये भी शायद एक सत्याग्राही की विवशता है कि वह उपेक्षा में भी अपमानित न महसूस करें। सच भी है- सच्चा सत्याग्राही कभी भी अपमान महसूस नहीं करता है। वह जानता है कि सत्य को अपमानित नहीं किया जा सकता। लेकिन तकलीफ तो होती है-पूरा स्थितप्रज्ञ जो नहीं हो पाया।"[28]

बापू किसी गाँधीवादी सिद्धान्त की स्थापना या प्रचार के लिए नहीं है। वह फिर एक नाटकीय त्रासदी को रूपायित करने का प्रयास है, जिस में अपने समय का सर्वाधिक प्रभावशाली व्यक्तित्व कैसे अन्त में अपने को सत्ता और हिंसा के खेल के सम्मुख असहाय पाता है-फिर भी हारी होड़ लगाए चलता रहता है।[29]

आचार्य जी का 'बापू' नाटक भारत विभाजन के समय हुए भयंकर नरसंहार की त्रासदी झेल रहे बापू के मन के अन्तर्द्वद्व का मार्मिकचित्रण है।

नाटककार का हर नाटक नयी संवेदना, नयी अनुभूति, शिल्प, वस्तु यानी सारा कुछ 'नयेपन' के आग्रह से जुड़ा हुआ है और एकाध अपवाद को छोडक़र नाटकों में रंगमंचीय संभावनाएँ भी है। नंदकिशोर आचार्य ने बहुत गंभीर नाटक कम लिखे है पर उनकी प्रसिद्धि कम नहीं है। यह सही है कि उनका अनुभव क्षेत्र बहुत व्यापक है क्योंकि देहान्तर के द्वंद्व को हर कोई पचा नहीं सकता और न किमिदम यक्षम, पागलघर और हस्तिनापुर की संवेदना की तीव्रता से मुकर ही सकता है। नाटक के व्यापक परिवेश और

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-1 No.3 January-December 2020

विविध समस्याओं को मनोवैज्ञानिक स्तर पर नाटककार ने पात्रों के द्वंद्व को निरन्तर पकडने़ की कोशिश की है और निश्चय ही उन्होंने भाव और स्थिति की गहरायी में जाने का प्रयास किया है। नंदकिशोर आचार्य के नाटकों से हिन्दी रंगमंच की स्थिति मजबूत हुई है, गंभीर नाटकों की ओर रूझान बढ़ी है। नाटककार की मौलिक रचनात्मक क्षमता एवं स्थिति तथा भावों की मजबूत पकड़ देखते हुए आगे और भी गंभीर नाटकों की आशा की जा सकती है।[30]

संदर्भ :-

1. प्रसाद के साहित्य में द्वंद्व चित्रण : एक विश्लेषण- डॉ. विनय कुमार सिंह पृ०सं०14, कला प्रकाशन, वाराणसी
2. हिन्दी नाटक व रंगमंच- डॉ. रामकुमार वर्मा पृ०सं० 149,
3. प्रसाद के साहित्य में द्वंद्व चित्रण : एक विश्लेषण- डॉ. विनय कुमार सिंह पृ०सं०17, कला प्रकाशन, वाराणसी
4. प्रसाद के साहित्य में द्वंद्व चित्रण : एक विश्लेषण- डॉ. विनय कुमार सिंह पृ०सं०-51, कला प्रकाशन, वाराणसी
5. प्रसाद के साहित्य में द्वंद्व चित्रण : एक विश्लेषण- डॉ. विनय कुमार सिंह पृ०सं०-51, कला प्रकाशन, वाराणसी
6. हिन्दी नाटक व रंगमंच- डॉ. रामकुमार वर्मा पृ०सं० 180,
7. हिन्दी नाटक व रंगमंच- डॉ. रामकुमार वर्मा पृ०सं० 181
8. प्रसाद के साहित्य में द्वंद्व चित्रण : एक विश्लेषण- डॉ. विनय कुमार सिंह पृ०सं०-60, कला प्रकाशन, वाराणसी
9. साठोत्तर हिन्दी नाटककार- लवकुमार लवलीन पृ०सं० 100, भावना प्रकाशन, दिल्ली 110091
10. साठोत्तर हिन्दी नाटककार-लवकुमार लवलीन पृ०सं० 100, भावना प्रकाशन, दिल्ली 110091
11. हिन्दी नाटक: रंगानुशासन एवं प्रायोगिक न्वोन्मेष (सन् 1947-2010)-डॉ. वीणा गौत्तम, के.के. पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली 110002
12. भानु भारती- मधुमती- जुलाई-अगस्त, 2000 पृ०सं० 152 राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर 313002
13. समकालीन हिन्दी नाटक : रंगमंच के परिप्रेक्ष्य में- डॉ. मिथिलेश गुप्ता पृ०सं० 260, भावना प्रकाशन, दिल्ली 110091

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-1 No.3 January-December 2020

14. समकालीन हिन्दी नाटक : रंगमंच के परिप्रेक्ष्य में- डॉ. मिथिलेश गुप्ता पृ०सं० 259, भावना प्रकाशन, दिल्ली 110091
15. समकालीन हिन्दी नाटक : रंगमंच के परिप्रेक्ष्य में- डॉ. मिथिलेश गुप्ता पृ०सं० 260, भावना प्रकाशन, दिल्ली 110091
16. समकालीन हिन्दी नाटक : रंगमंच के परिप्रेक्ष्य में- डॉ. मिथिलेश गुप्ता पृ०सं० 260, भावना प्रकाशन, दिल्ली 110091
17. हिन्दी नाटक: आज तक- जयदेव तनेजा पृ०सं० 64
18. समकालीन हिन्दी नाटक : सृष्टि और दृष्टि- लवकुमार लवलीन पृ०सं० 63, भावना प्रकाशन, दिल्ली 110091
19. समकालीन हिन्दी नाटक : रंगमंच के परिप्रेक्ष्य में- डॉ. मिथिलेश गुप्ता पृ०सं० 260, भावना प्रकाशन, दिल्ली 110091
20. रूबरू-नंदकिशोर आचार्य पृ०सं० 36 सूर्य प्रकाशन मंदिर, बीकानेर
21. रूबरू-नंदकिशोर आचार्य पृ०सं० 37 सूर्य प्रकाशन मंदिर, बीकानेर
22. वीणा गौतम- हिन्दी नाटक: रंगानुशासन एंव प्रायोगिक नवोन्मेष (1947-2010) पृ०सं० 243, के.के. पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली- 110002
23. नाट्य संरचना का सूक्ष्म बोध (रंगयात्रा)- फैजल अल्का जी पृ०सं० 275 सूर्य प्रकाशन मंदिर, बीकानेर
24. नाट्यानुभव-नंदकिशोर आचार्य पृ०सं० 96 वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर
25. रंगयात्रा-(बापू नाटक) नंदकिशोर आचार्य पृ०सं० 345 सूर्यप्रकाशन मंदिर, बीकानेर
26. रंगयात्रा-(बापू नाटक) नंदकिशोर आचार्य पृ०सं० 346 सूर्य प्रकाशन मंदिर, बीकानेर
27. रंगयात्रा-(बापू नाटक) नंदकिशोर आचार्य पृ०सं० 349 सूर्य प्रकाशन मंदिर, बीकानेर
28. रंगयात्रा-(बापू नाटक) नंदकिशोर आचार्य पृ०सं० 358, सूर्य प्रकाशन मंदिर, बीकानेर
29. रंगयात्रा-(बापू नाटक) नंदकिशोर आचार्य पृ०सं० 371, सूर्य प्रकाशन मंदिर, बीकानेर
30. लवकुमार लवलीन- साठोत्तर हिन्दी नाटककार- पृ०सं० 113, भावना प्रकाशन, दिल्ली 110091

Copyright © 2020 Authors